AMOGHVARTA

ISSN : 2583-3189

हिन्दी साहित्य में किसानः एक विमर्शात्मक अध्ययन

ORIGINAL ARTICLE

Author
डॉ. दीपक कुमार
हिन्दी विभाग
महात्मा गाँधी काशी विद्यापीठ
वाराणासी, उत्तरप्रदेश, भारत

शोध सार

हिन्दी भाषा का प्रसार विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से चौथे एवं भौगोलिक क्षेत्रफल की दृष्टि से दूसरे स्थान पर है। भारत में मूलतः हिन्दी बोलने, लिखने और समझने वाले लोग मुख्य रूप से मध्य भाग, उत्तर प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उत्तराखण्ड, झारखण्ड, हरियाणा, राजस्थान, दिल्ली में पूर्णतः और आस–पास के लोग हुए लगभग सभी प्रदेशों में थोड़ी बहुत बोली–लिखी और समझी जाती है। वैसे तो पूरे भारत में समझी और प्रयोग में लायी जाती है। यही प्रदेश (दिल्ली को छोड़कर) किसान बाहुल्य प्रदेश भी है। हिन्दी यही पर पली और बढ़ी है। इन्हें हिन्दी भाषा प्रदेश भी कहा जाता है।

मुख्य शब्द

हिंदी साहित्य, भाषा, किसान.

भारत की लगभग 60 प्रतिशत जनसंख्या खेती पर आश्रित है, भारत का मध्य भाग कृषि की दृष्टि से बड़ा ही महत्वपूर्ण और उपजाऊ है। इस क्षेत्र की आबादी मेहनती और कामकाजी लोगों की है। यहाँ के लोग खेतों में काम करके अपनी जीविका और जरूरतों को पूरा करते है। इस क्षेत्र के किसानों की भाषा पूर्ण रूप से हिन्दी या हिन्दी की उपभाषाएं और बोलियां है। साहित्य के विकास में इस क्षेत्र का महत्वपूर्ण योगदान है, योगदान देने वाले या तो किसान है, या उसके पारिवारिक सदस्य रहें है। साहित्य में किसानों के सहयोग को देखते हुए सुनिश्चित करना चाहिए। हिन्दी साहित्य में अलग–अलग विमर्शो का इतिहास लेखन एवं साहित्य में उसका मूल्यांकन होता रहा है। समय के साथ–साथ लोगों की साहित्यिक चेतना भी बदलती रही है, जिससे शोध परिणामों में भी बदलाव होता रहा है हमारे साहित्य में विभिन्न प्रकार के विर्मशों पर शोध एवं साहित्यिक चर्चाएँ होती रहीं है जैसे स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि हमारा किसान भी उपेक्षित एवं समाज और विकास में पिछड़ा हुआ हैं। अन्य विमर्शो की तरह किसान विमर्श पर भी शोध और चर्चाओं की आवश्यकता है। किसानों से सम्बन्धित रचनाओं को ढूंढ कर और उन्हें परखते हुए कि किस रचना से किसान को साहित्य में जगह मिली और किसान रचना में उनकी समस्याओं और जीवन शैली को प्रमुखता से साहित्य में उठाया गया है।

''जिस देश के 80 फीसदी मनुष्य गाँवों में बसते हो, उनके साहित्य में ग्राम्य जीवन ही प्रधान रूप से चिंतित होना स्वभाविक है। उन्हीं का सुख राष्ट्र का सुख उनका दुःख और उन्हीं की समस्याएं राष्ट्र की समस्याएँ है।'' यह नियत होनी चाहिए। अर्थशास्त्र के दो शब्द मूल्य और कीमत की ही तरह किसान और खेतिहर में कोई फर्क न मान इसे पयार्यवाची मान लिखा जाता है पर दोनों में बड़ा फर्क है। हमारे यहाँ दो प्रकार के किसान होते है, एक खेतीहर किसान जिसके पास अधिक जमीन और बाहरी आर्थिक मदद जैसे कि उसके घर के सदस्य नौकरियों के द्वारा और

व्यवसाय से प्राप्त धन के द्वारा उसकी सहायता कर दते है। दूसरा गरीब किसान, जिसके पास जमीन और संसाधन दोनों कम होते, हालांकि किसान तो दोनों हैं पर गरीब किसान के पास ऐसा कुछ नहीं होता जिससे उसकी सहायता हो सके, वह सदैव आभाव में जीता है। अब खेतिहर किसान व्यवसायिक हो गया पर और गरीब हो गया। किसान आन्दोलन तथा समय के साथ किसानों में परिवर्तन तो हुआ और किसानों ने तरक्की भी की, पर गरीब अपने जगह से थोड़ा भी ऊपर नहीं उठा, उसके अभाव की स्थिति जस की तस बनी रही। अब सवाल उठता है कि वास्तव में किसान विमर्श है क्या? किसानों की समस्याओं को उनके रहन–सहन को जीवन शैली को विकास तथा बाधाओं के मुद्दों पर स्वस्थ और जागरूक चिंतन को किसान विमर्श कहा जा सकता है। हमारा किसान आज मध्यम वर्ग श्रेणी में खड़ा है, बाहरी तौर पर वह खुश भी दिखाई देता है पर क्या वह सच में खुश है? किसान वह वर्ग है जो कभी हारा हुआ नहीं दिखता, पर हमारी प्रकृति और पूँजिपतियों के प्रहार का सबसे आसान चारा वही है। वह प्रकृति की तरह फिर से खड़ा हो जाता है। इन स्थितियों का चित्रण मुंशी प्रेमचंद ने बखूबी किया हैं। ''तुम्हीं सोचों आदमी कहा तक दबे? यहाँ तो जो किसान है, वहीं सबका नरम चारा है।

सर्वप्रथम किसानों के कार्य, व्यापार का वर्णन अमरकोष के द्वितीय काण्ड के नौवें सर्ग में प्राप्त होता है। भक्ति के भी कुछ रचनाओं में किसान शब्द का प्रयोग कही–कही हुआ है। जैसे – तुलसी के काव्य में खेती व किसानों को भिखारी को न भीख भली। आदिकाल, भक्तिकाल और रीतिकाल में किसानों को साहित्य में जगह न मिली। आदिकाल में वीरगाथात्मक रचनाओं से तथा नायक और नायिका से साहित्य भरता रहा। भक्तिकाल में भक्तिपूर्ण रचनाएँ तथा रीतिकाल दोनों कालों में सामंजस्य ही बनाता रहा। किसान साहित्य से नदारद रहा। आधुनिक काल में भारतेंदु जी के जन्म के पश्चात् ''शादियों से बधें हुए घाट टूट गये और जीवन की धारा विविध श्रोतों में फूट निकली। साहित्य मनुष्य के सुख–दुःख के साथ पहली बार जुड़ा'' आधुनिक काल के बाद किसानों को साहित्य में बखूबी जगह मिली किसान विमर्श गद्य और पद्य दोनों में प्रमुखता से उठाया गया किसान विमर्श मूल रूप से प्रेमचन्द की रचनाओं जैसे – उपन्यास, प्रेमाश्रय 1921 ई. जिसमें किसानों के दशा और दिशा की वास्तविकता को बखुबी दिखाया गया है।

''भूमि या तो ईश्वर की है जिसमें उसकी सृष्टि की है या किसान की जो ईश्वरी इच्छा के अनुसार उसका उपयोग किया।''

उपन्यास, गोदान 1936 ई. जिसे ग्रामीण जीवन का महाकाव्य कहा गया है उपन्यास के पात्र होरी और धनिया का कृषक जीवन ही शत् प्रतिशत भारतीय किसानों का प्रतिनिधित्व करता है। गाँवों की आवश्यकता गावों में पूरी हो जाती थी। शहर तो शहर ठहरे इसीजिए किसानों तथा अन्य ग्रामिणों पर पढ़े लिखे लोगों का ध्यान कम जाता था, पर मुंशी जी का ध्यान किसानों पर गया।

''मर्यादावादी किसान घिसते–घिसते मजदूर हो जाता है और पिसते–पिसते शव, संक्षेप में यही उसका जीवन है।'' डॉ. रामविलास शर्मा जी ने कहा है– ''अगर हिन्दी को विश्व स्तर पर पहचान मिली है तो पहचान दिलाने में प्रेमचंद जी उनमें सर्वोपरि है।'' यदि उनकी रचनाएँ विश्व स्तर पर पहुँची और उन्हें पढ़ा गया तो उनकी रचनाओं में जो किसान विमर्श मौजूद है इसलिए हम निर्विवाद यह कह सकते है कि गद्य साहित्य में किसान विमर्श और किसान को सर्वप्रथम प्रेमचन्द ने ही जगह दिया।

रंगभूमि और कर्मभूमि में उन्होंने ग्रामीणों और किसानों का बेबाक चित्रण किया है। उनकी कहानी 'पूस की रात 1930 ई. के हल्कू का कार्य व्यवहार और कृषक विवशता, सुभागी, कहानी के सुभागी का तमाम झन्झावट के पश्चात् भी आदर्श कृषक जीवन, ''बाबा का भोग'' कहानी के किसान का सामाजिक व्यवहार और अन्धविश्वास आदि में किसानों का मार्मिक और संजीव चित्रण किया है। उन्हीं की कहानी सुजान भगत 1927 ई. और अलग्योझा 1929 ई. में भी किसानों के ग्रामीण परिवेश और समस्याओं को प्रमुखता से उठाया गया है। महाकाल अमृतलाल नागर, पानी के प्राचीर, अपने लोग, रामदरश मिश्रा, मल्कराज आनन्द, किसान पर प्रकाश डालती है। उधर कात्य में मैथिलिशरण गुप्त जी ने कृषक कथा 1951 ई. किसान 1916 ई. शीर्षक काव्य भी किसानों पर लिखी। मैथिलीशरण

गुप्त जी ने किसान के निःस्वार्थ भाव और उनके अथक परिश्रम तथा दैनिक स्थितियों पर प्रकाश डाला है।

बरसा रहा है रवि अनल, भूतल तवा सा जल रहा है
चल रहा सन सन पदन, नत से पसीना ढल रहा है।
देखों कृषक शोणित सुखाकर हल तथापि चला रहे,
किस लोग से इस आँच में वे निज शरीर जला रहा।

वही स्नेही जी का 'दूखिया किसान 1912 ई. कृषक कंचन 1916 ई. सभी सरस्वती पत्रिका में छपी निराला जी कुछ कविताएं 'लू का झोंका' काले–काले बादल, जल्द–जल्द पैर बढ़ाओं आदि में किसानों की समस्याओं रहन सहन, जीवन शैली को प्रमुखता दी गयी तथा किसानों पर किये गये शोषण को दिखाया गया। केदारनाथ अग्रवाल जी की यह पंक्तियाँ किसान विमर्श व उन पर किए गये शोषण का एक वास्तविक चित्र खिंचती है।

जब बाप मरा तग क्या पाया भूखे किसान के बेटे ने
घर का मलवा टूटी खटिया वह भी परती।
कंचन सुमेरू का प्रतियोगी द्वारे का पर्वत घूरे का
बनिये का रूपये का कर्जा जो नहीं चुकाने पर चुकता।

माखन लाल चतुर्वेदी जी की कंचन 1940 ई. शीर्षक कविता में किसान में मेहनत और खून पीसने से उपजाएं गये अन्न को दूसरे लोग बड़े चाव से खाते, उन्हें पता नहीं होता कि अन्न को उत्पन्न करने में किसान अपना खून पसीना एक करता है। माखन जी का किसान अपनी व्यवस्था को इस प्रकार व्यक्त करता है।

खा रहे हो अन्न?
मरणासन्न मेरी हड्डियों का स्वाद कैसा लग रहा है।
चूसते हो फल?
संभालोंः रक्त–रक्त मेरा भर रहा है सब फलों में और वह भी झर रहा है।
जो झरा करता आभागेदृग जलों में।

इससे पहले भी किसान विमर्श का मूल्यांकन किया गया है, पर उनमें किसान विमर्श है ही नहीं। इतिहास में अनावश्यक रचनाओं को जगह दिया गया है। इतिहासकारों ने निराला जी के भिक्षुक को किसान बताया है। मैं बताना चाहूँगा किसान आत्महत्या कर लेगा पर भीख नहीं मागेंगा। रामचरित मानस में राम जी को उनके चौदह वर्ष के वनवास को कृषि से जोड़ दिया गया है। राम की तरह किसानों को राजाश्रय और सम्मान नहीं मिलता है। वे मजदूर होते है राजा नहीं, 'कफन में माधव–घीसू की तरह किसान आलसी और चोर नहीं होता। इतिहासकरों ने जो निम्न गरीब है उसे जो मध्यम नौकरी, पैसा खेतिहर है उसे किसान कैसे मान लिया है?

पढ़ाई में किसानों के बचे अधिकांशतः हिन्दी भाषा को अपनी प्रमुख विषय के रूप में चुनते है। किसानों के हित में हिन्दी साहित्य में जगह देनी चाहिए जिससे उनकी रोचकता साहित्य के प्रति और बढ़े साथ ही यह साहित्य के लिए उपयोगी होगा, किसानों पर लिखी गयी पुस्तकें और रचनाओं को एक पटल पर रखा जाये, जिससे आगे चल कर आने वाली पीढ़ी को किसानों के दशा और दिशा का आँकलन करना आसान हो सकेगा। जो हिन्दी का इतना बड़ा हितैषी है, वह साहित्य में कितना है, इसका भी पता चलेगा।

निष्कर्ष

इस शोध के द्वारा लेखकों साहित्यकारों का ध्यान आकर्षित होगा जिससे वे किसानों की समस्याओं उनकी स्थितियों पर प्रकाश डालेगा, जिससे लोगों का ध्यान किसानों पर जायेगा, तभी किसानों में सुधार होगा, विकास होगा, और अब इनका विकास होगा तो हिन्दी का विकास अवश्य होगा।

किसानों के प्रति लोगों का नजरियाँ बदल रहा है, किसानों में तेजी से होते परिवर्तन को देखा जा सकता है

वही समस्याएं भी अपना रूप बदल चुकी है, जो हिन्दी साहित्य का किसानों के प्रति पुराना परिदृश्य था। वह अब काफी कुछ बदलता जा रहा है। किसानों में भी आधुनिकता का निवेश किया जा रहा है। वह खुद भी आधुनिकता ग्रहण कर रहा है। वही वास्तविक किसान की जो दशा तब थी वह आज भी आधुनिकता ग्रहण कर रहा है वही वास्तविक किसान की जो दशा तब थी वह आज भी है। उसका वास्तविक विकास अंधेरे में हैं जैसा कि कहा गया है – ''साहित्य समाज का दर्पण है'' तो साहित्यचार्पो का उत्तरदायित्व बनता है कि समाज में (किसानों में) क्या कुछ घट रहा है। उस पर प्रकाश डाला जाये पुराने परिदृश्य को नवीन पृष्ठभूमि पर रख कर परखा जाये, उसे लोगों के बीच रखा जाये तभी किसानों की वास्तविकता लोगों के सामने आयेगी।

संदर्भ सूची

1. मुंशी प्रेमचन्द, (1938) *प्रेम द्वादशी की भूमिका में,* सरस्वती बुक्स, बनारस, पृष्ठ 4।
2. मुंशी प्रेमचन्द, (2011) *गोदान,* अमित पाकेट बुक्स, जालन्धर (पंजाब), पृष्ठ 29।
3. नागेन्द्र, (2021) *हिन्दी साहित्य का इतिहास,* मयूर बुक्स, दरिया गंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ 565।
4. मुंशी प्रेमचन्द, (2012) *प्रेमाश्रय,* संस्करण 7 भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, पृष्ठ 635।
5. शर्मा रामविलास, (2016) *प्रेमचन्द और उनका युग भूमिका,* राज कमल प्रकाशन, दरिया गंज, नयी दिल्ली, पृष्ठ 74, 98।
6. गुप्त मैथिलिशरण, (2001) *किसान,* साहित्य सदन, चिरगाँव, झाँसी, पृष्ठ 18।

——==00==——